भगवान श्री रजनीश

बिखरे - फूल

भगवान् श्री रजनीश

संकलन :

मा धर्म ज्योति

सम्पादनः

स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई,

१९७२

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन० शाह,
मंत्री, जीवन जागृति केंद्र,
३१, इजरायल मोहल्ला,
भगवान् भुवन, मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई-९

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९६९
प्रतियां : २०००
द्वितीय आवृत्ति : जनवरी, १९७०
प्रतियां : २०००
तृतीय आवृत्ति : सितम्बर १९७२
प्रतियां : ५०००

मूल्य रु. १.००

मुद्रक :
मे० खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
७ वीं खेतवाड़ी, बम्बई-४
के लिये डी० एस० शर्मा

निवेदन

भगवान् श्री रजनीश का साहित्य पढ़ते समय कुछ ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं कि वहीं रुक जाना पड़ता है, और उन शब्दों के भाव हृदय की गहराइयों को छू लेते हैं। जैसे किसी सुगन्धित फूल को सूंघते ही हृदय खिल उठता और प्राणों में एक प्रकार की झंकार शुरू हो जाती वैसा ही अनुभव भगवान् श्री का साहित्य पढ़ते कई बार हुआ है।

उनके शब्द निःशब्द में पहुँचा देते हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे जीवन के रहस्य स्पष्ट हो रहे हैं। जिन फूलों ने मेरे हृदय के मुर्झाये हुए फूल को फिर से प्रफुल्लित किया ऐसे ही कुछ बिखरे हुए फूलों का यह संग्रह है।

मुझे आशा है कि इन बिखरे हुए फूलों में से अगर किसी एक-दो फूल की सुगंध भी आपके हृदय को छू सकी तो आप के जीवन में अवश्य ही एक बड़ी क्रांति घटित होगी जिससे आपका जीवन भी आमूल बदल जायेगा।

– मा धर्म ज्योति

बिखरे – फूल

ओ मनुष्य ! तुझे खोना कुछ भी नहीं है सिवाय अपने अंधेपन के और पा लेना है सब कुछ । अपने हाथों बने भिखारी ! आँखें खोल ! पृथ्वी और स्वर्ग का सारा राज्य तेरा है ।

*

भगवान् को पाने को कुछ करना नहीं है, वरन् सब करना छोड़ कर देखना है। चित्त जब शांत होता है और देखता है तो द्वार मिल जाता है ।

*

भगवान् को चाहते हो तो स्वयं से खाली हो जाओ । जो स्वयं से भरा है वही भगवान् से खाली है और जो स्वयं से खाली हो जाता है, वह पाता है कि वह सदा से ही भगवान् से भरा हुआ था ।

*

स्वप्न खोते ही सत्य उपलब्ध है। स्वप्न जहां नहीं है तब जो शेष है वही है स्व-सत्ता, वही है सत्य, वही है स्वतंत्रता।

*

समाधि के मार्ग में यदि स्वयं भगवान् भी मिलें तो उन्हें राह से दूर कर देना ।

*

स्वयं को कभी भी ज्ञेय की भांति नहीं जाना जाता है इसलिए जब तक कुछ भी ज्ञेय शेष है, तब तक जानना कि साक्षात "पर" का है, "स्व" का नहीं। ज्ञेय जब अशेष है, तब जो शेष रह जाता है, वही "ज्ञान" है, वही "स्व" है, वही "सत्य" है।

*

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह उन्हें मिलता है जो अकेले होने का साहस रखते हैं।

जीवन पटरियों पर चलती हुई गाड़ियों की तरह नहीं है, सुंदर पर्वतों से सागर की ओर दौड़ती हुई सरिताओं की भांति है।

*

मिट्टी फूल बन जाती है और गंदगी खाद बन कर सुगन्ध में परिणत होती है। ऐसे ही मनुष्य के विकार है। वे शक्ति हैं। जो मनुष्य में पशु जैसा दिखता है वही दिशा परिवर्तन होने पर दिव्यता को उपलब्ध हो जाता है। पशुता में और दिव्यता में विरोध नहीं, विकास है।

*

मनुष्य जैसा भाव करता है, वैसा ही हो जाता है। उसके ही भाव उसका सृजन करते हैं। वही अपना भाग्य विधाता है।

*

पाप के मार्ग पर सफलता असम्भव है और प्रभु के मार्ग पर असफलता असम्भव है। पाप के मार्ग पर सफलता हो तो समझना कि भ्रम है और प्रभु के मार्ग पर असफलता हो तो समझना कि परीक्षा है।

*

परमात्मा के पूर्व जो रुकता है, वह स्वयं का अपमान करता है, क्योंकि वह जो हो सकता था उसके पूर्व ही ठहर गया होता है।

*

परमात्मा की उपलब्धि के पूर्व यदि तुम्हारे चरण कहीं भी रूकें, तो जानना कि निराशा का विष कहीं न कहीं तुम्हारे भीतर बना ही हुआ है। उससे ही प्रमाद और आलस्य उत्पन्न होता है।

*

सत्य के सम्बन्ध में कुछ जानना और सत्य को जानना दो बिल्कुल भिन्न बातें हैं। सत्य के सम्बन्ध में जानना बुद्धिगत है, "सत्य को जानना" चेतनागत है।

*

मैं मिट्टी छोड़ने को नहीं कहता हूं, मैं तो हीरे पाने को कहता हूं। हीरे पा लो, मिट्टी तो अपने आप छूट जाती है।

*

हम सब से भाग सकते हैं, पर "स्वयं" से नहीं भाग सकते हैं। जीवन भर भाग कर हम अंत में पायेंगे कि कहीं भी नहीं पहुचे हैं। इसलिए जो विवेकशील हैं वे स्वयं से भागते नहीं, स्वयं का साक्षात् करते हैं।

"पर" पर आँख न हो तो वह "स्व" पर खुल जाती है। बाहर उसे आधार न हो तो वह "स्व" पर आधार खोज लेती है।

*

"मैं" की मृत्यु परमात्मा से, सत्य से, सत्ता से हमारे भेद और अंतर की मृत्यु है। उसके गिरते ही वह फासला गिर जाता है, जो कि हमें स्वयं से ही तोड़े हुए था। और वह व्यक्ति धन्यभागी है जो शरीर की मृत्यु के पूर्व इस मैं की मृत्यु को उपलब्ध होता है।

*

"आकांक्षा"—कुछ होने और कुछ पाने की "आकांक्षा" ही बंधन है।

*

प्रभु समर्पित करने योग्य मनुष्य के पास "मैं" के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। शेष जो भी वह छोड़े वह केवल छोड़ने के भ्रम में है, क्योंकि वह उसका था ही नहीं। "मैं" केन्द्र से यदि कोई अपना समस्त जीवन भी प्रभु को दे दे, तो भी वह देना नहीं है। "मैं" को दिए बिना और कुछ भी देना, देना नहीं है।

*

शब्द खोना समाधि है। लेकिन केवल शब्द खोना मात्र समाधि नहीं है, शब्द तो मूर्छा में भी खो जाते हैं। सुषुप्ति में भी खो जाते हैं। शब्द खोकर भी जाग्रत, चेतन और प्रबुद्ध बने रहना समाधि है।

*

चेतना जहां निर्विषय है, निर्विचार है, निर्विकल्प है, वहीं जो अनुभूति है वही स्वयं का साक्षात्कार है।

*

आत्मा को केवल वे ही जान पाते हैं, जो सब खोज छोड़ देते हैं और वे ही जान पाते हैं जो सब जानने से शून्य हो जाते हैं।

*

सत्य के सम्बन्ध में जो भी कहो, वह कहने से ही असत्य हो जाता है।

*

मनुष्यों के बीच पत्थरों की नहीं, शब्दों की ही दीवारें हैं।

*

मनुष्य यदि स्वयं को जाने और जीते तो ही उसकी शेष सब जीतें उसकी और उसके जीवन की सहयोगी होंगी, अन्यथा वह अपने ही हाथों अपनी कब्र के लिए गड्ढा खोदेगा।

जो विचार, जो भाव और जो कर्म मेरे अंतः संगीत के विपरीत जाते हों वे ही पाप हैं, और जो उसे पैदा और समृद्ध करते हों, उन्हें ही मैंने पुण्य जाना है।

*

विचार के तटस्थ, चुनाव-शून्य निरीक्षण से विचार-शून्यता आती है।

*

क्या अज्ञान से भी घातक वह ज्ञान नहीं है, जिसकी ओट में अज्ञान छिप सकता है? निश्चय ही वह मित्र शत्रुओं से कहीं ज्यादा शत्रु है जो शत्रुओं को छिपाने का कार्य करता है।

*

शक्ति सदा शुभ नहीं, वह तो शुभ हाथों में ही शुभ होती है।

*

जीवन भी बाँसुरी की भाँति है। अपने में खाली और शून्य, पर साथ ही संगीत की अपरिसीम सामर्थ्य भी उसमें है। पर सब कुछ बजाने वाले पर निर्भर है।

*

सत्य की कसौटी तर्क नहीं है। सत्य की कसौटी विचार नहीं है। सत्य की कसौटी है आनन्दानुभूति। विचार सरणि सम्यक् हो तो परिणाम में जीवन आनन्द चेतना से भर जाता है।

*

सोचो मत, देखो और केवल देखो। विचार न हो और मात्र दर्शन हो तो एक बड़ा राज खुल जाता है और प्रकृति के द्वार से उस रहस्य में प्रवेश होता है, जो कि परमात्मा है।

*

जीवन को स्वीकार करो। वह परमात्मा का प्रसाद है। लड़ो नहीं। भागो नहीं। उसे प्रेम करो। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और कोई विजय नहीं है।

*

मेरा संदेश पूछते हैं? बहुत छोटा सा है: "जीवन में जागे हुए जियें, क्योंकि जो सोता है वह स्वयं को खो देता है।"

*

प्रेम से सृष्टि जन्मी है। प्रेम से ही वह पोषित है। प्रेम की ओर ही वह प्रगतिशील है। और अंततः प्रेम में ही वह प्रविष्ट हो जाती है। और तुम पूछते हो कि मैं प्रेम को परमात्मा क्यों कहता हूं? इसलिये ही कहता हूँ। इसलिए ही कहता हूँ।

विजय के लिये युद्ध से गुजरना आवश्यक है। लेकिन अधिकतम लोग युद्ध के पूर्व ही विजय चाहते हैं। मेरे देखे ऐसे लोगों के अतिरिक्त और कोई भी अंततः नहीं हारता है।

*

शब्द सार्थक हैं यदि वे निःशब्द के लिए इंगित हों। वाणी सार्थक है यदि वह मौन में ले जाये। और जीवन सार्थक है यदि वह व्यक्ति को उस महामृत्यु के लिये तैयार करता है जो कि प्रभु का द्वार है।

*

सत्य का द्वार है शून्य। मिटो ताकि उसे पा सको। जो मिटते हैं, वे अमृत को पा लेते हैं।

*

सत्य और स्वयं के बीच अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

*

स्वयं को खोने के मूल्य पर ही परमात्मा पाया जाता है। साहस करो और मिट जाओ।

*

तोड़ना ही है तो तोड़ो जड़ताओं को ....सामाजिक और आर्थिक दासताओं को .... मन की मूर्च्छा को ....

*

मित्र, शांति के दर्पण बनो ताकि परमात्मा का चन्द्रमा तुम में प्रतिफलित हो सके।

*

जीवन अपनी पूर्णता में केवल उस चित्त के समक्ष ही प्रगट होता है, जो कि निर्विचार को उपलब्ध हो जाता है।

*

सत्य तो निकट है, लेकिन हम शांत नहीं हैं।

*

ईश्वर कोई किताबी सत्ता नहीं है, वह तो व्यक्ति की अंतर्सत्ता है।

*

सत्य की खोज के लिये चाहिये ज्वलंत प्यास—ऐसी प्यास जो सत्य के अतिरिक्त और किसी भी चीज से तृप्त न हो।

*

स्वतंत्र बनो। तोड़ो चित्त की जंजीरों को। मुक्ति की प्रथम शर्त यही है।

अज्ञात में जाने के लिए ज्ञात को छोड़ना ही पड़ता है।

*

धर्म है जीवन को जीने की कला और सत्य है जीवन में उसकी सुगन्ध।

*

परमात्मा है प्रकाश की भांति। उसे जानने को चाहिए प्रज्ञा की आँखें।

*

धर्म है वास्तविक जीवन की खोज और जो उसे नहीं खोजता, वह व्यर्थ ही जीवन खो देता है।

*

सत्य है सीमाओं से मुक्त चित्त में—और वही है प्रेम और परमात्मा का मंदिर।

*

मैं विद्रोह का स्वागत करता हूं, लेकिन अंधे विद्रोह का नहीं, आंखों वाले विद्रोह का।

*

काम की ऊर्जा का विकास जीवन में प्रेम को जन्म देता है और प्रेम धर्म का केन्द्रीय बिन्दु है।

*

जीवन के अर्थ को जानना है? तो चलो निर्विचार समाधि में, उसके अतिरिक्त सब व्यर्थ है।

*

चित्त की परम स्वतत्रता ही परमात्मा को पाने की पात्रता है।

*

धर्म छोड़ना नहीं है, धर्म है पाना। धर्म संसार का विरोध नहीं, धर्म है ईश्वर को पा लेना।

*

परतंत्र चित्त और परमात्मा में कभी भी मिलन नहीं होता, क्योंकि परमात्मा प्रकाश है और परतंत्र चित्त से घना कोई अंधकार नहीं है।

*

वह व्यक्ति जीवित ही नहीं है जो कि स्वयं की सत्ता को संकट में अनुभव नहीं करता।

संकट सत्य की दिशा में अनुसंधान का जन्म है।

*

इसके पहले कि मृत्यु तुम्हें खोजे, अच्छा है कि तुम ही उसे खोज लो। इससे अधिक आत्यंतिक अर्थ की और कोई बात नहीं है।

*

वस्तुतः तो मृत्यु में भय नहीं है, भय में ही मृत्यु है।

*

प्रेम की खोज का अर्थ है अहंकार की मृत्यु। इसलिये मैं कहता हूँ : मुक्ति नहीं, प्रेम खोजो।

*

मैं हूँ तो खंड में हूँ। मैं नहीं हूँ तो अखंड में हूँ। और खंड में होना बंधन है, अखंड में होना मुक्ति है।

*

व्यक्ति समस्या में नहीं, अपितु व्यक्ति ही समस्या है।

*

संगीत की लयबद्धता में, प्रेम की परिपूर्णता में, प्रकृति के सौन्दर्य में जब व्यक्ति न होने जैसा ही हो जाता है, तब जो है, वही सत्य है।

*

सत्य और स्वयं के मध्य कोई अलंघ्य खाई नहीं है, सिवाय साहस के अभाव के।

*

मनुष्य भी कैसा अद्भुत है, उसके भीतर कूड़े-करकट की गंदगी भी है और स्वर्ण की अमूल्य निधि भी। और हम किसे उपलब्ध हो जाते हैं, यह बिल्कुल ही हमारे हाथ में है।

*

जो अतीत को ढोता है, वह मृत को ढोने के कारण मृत होता है।

*

अहं को छोड़ो और अपनी पूजा कम करो। अपनी पूजा छोड़ देना ही परमात्मा की पूजा है।

*

मनुष्य की महत्ता यही है कि वह सेतु है, अन्त नहीं।

*

मनुष्य एक यात्रा है—अनन्त के लिए यात्रा।

मैं दूसरों में विश्वास करने को नहीं कहता हूं, क्योंकि वह स्वयं में विश्वास के अभाव का परिणाम है।

*

महानता से सरल और कुछ नहीं है, वस्तुतः सरलता ही महानता है।

*

दूसरों को दिया गया धोखा अन्त में स्वयं को ही दिया गया धोखा सिद्ध होता है।

*

"मैं" से भागने को कोशिश मत करना। उससे भागना हो ही नहीं सकता, क्योंकि भागने में भी वह साथ ही है।

*

मैं खोजता था तो मौन से बड़ा कोई शास्त्र नहीं पा सका।

*

जीवन की खोज में आत्म-तुष्टि से घातक और कुछ भी नहीं है।

*

सत्य की जिज्ञासा कर रहे हो और मन पर धूल इकट्ठी करते जाते हो!

*

एक भ्रम को मिटाने को दूसरा भ्रम पैदा मत करो, एक स्वप्न तोड़ने को दूसरे स्वप्न में जाना उचित नहीं है।

*

उसे सोचो जिसे तुम सोच ही सकते हो और तुम सोचने के बाहर हो जाओगे। सोचने के बाहर हो जाना ही स्वयं में आ जाना है।

*

क्या सत्य को पाने के लिये, सत्य के संबन्ध में जो सीखा है, उसे भूलने की तुम्हारी तैयारी है?

*

सत्य जाना तो जा सकता है, लेकिन न तो समझा जा सकता है और न समझाया ही जा सकता है।

*

संसार में संसार का न होकर रहना संन्यास है।

*

पाप क्या है? स्वयं के ईश्वरत्व से अस्वीकार। स्मरण रहे कि स्वयं की दिव्य की स्मृति के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है।

मनुष्य का मन भी वीणा की भांति है। उससे संगीत और विसंगीत दोनों ही पैदा हो सकते हैं।

*

सत्य के निकट वही पहुँचा है जो स्वयं के भीतर संगीतपूर्ण होता है।

*

ज्ञान मिथ्या है, यदि वह विनम्र नहीं।

*

वासना में दुख है, क्योंकि वासना दुष्पूर है।

*

क्या प्रभु की वाणी सुनना चाहते हो? तो संसार के प्रति बहरे हो जाओ।

*

मित्र, अशुभ को छोड़ा है, अब शुभ को भी छोड़ दो। क्योंकि जहाँ तक किसी पर भी पकड़ है, वहाँ तक अहंकार है।

*

धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि परमात्मा अपनी संपदा से उन्हें परिपूरित कर देता है।

*

प्रेम का अमृत जहाँ है, वहीं आनन्द के फूल हैं।

*

सद्‌गुण सुख है।

*

जीवन के अंधकार पथ पर मुझे कोई न जाने, तो कोई कठिनाई नहीं, लेकिन मैं स्वयं को ही न जानूं तो क्या होगा?

*

मैं कहता हूं: "दो, दो, दो।" करुणा दो, सेवा दो, प्रेम दो। क्योंकि जो जो देता है, वही वापस पाता है।

*

मित्र, भय न खाओ। क्योंकि जिससे तुम भयभीत हुये, उससे ही तुम्हारा साथ हो जायगा।

*

जीवन-विजय के लिये धैर्य से बड़ी और कोई शक्ति नहीं है।

*

निश्चय ही कठिन है स्वयं को जीतना। किन्तु स्वयं के अतिरिक्त और कुछ जीतना तो असंभव है।

जीवन में सबसे बड़ा गुण पूछते हो ? तो वह है साहस (Adventure)। क्योंकि साहस के बिना स्वतंत्रता नहीं, स्वतंत्रता के बिना सत्य नहीं और सत्य के बिना सदाचार नहीं।

*

साहस, जीवन के भवन के लिये वही करता है, जो कि किसी भी भवन के लिये नींव के पत्थर करते हैं।

*

जीवन को कल के केन्द्र पर निर्मित मत करना, क्योंकि जीवन तो है आज।

*

प्रार्थना में यही कहीं ज्यादा उचित है कि हृदय हो और शब्द न हो, बजाय इसके कि शब्द हो और हृदय न हो।

*

सत्य यदि जीने योग्य प्रतीत न हो तो उसे मानने योग्य मानना भी उचित नहीं है।

*

हम स्वयं ही स्वयं को जितना धोखा देते हैं, उतना और कौन हमें दे सकता है ? इस भांति स्वयं के ही हम शत्रु हैं।

*

जीवन में धर्म का प्रारंभ वहीं से है, जहाँ से स्वयं से मित्रता की शुरूआत है।

*

आनन्द चाहते हो तो आनन्द बांटो—आनन्द दो। चाहो मत—दो। क्योंकि देने में ही वह आता है। बांटने में ही वह मिलता है।

*

क्या हम उन मछलियों की भांति ही नहीं हैं, जो कि मछुये के जाल में फँस गई हैं और तड़प रही हैं।

*

जीवन एक कुंठा है, क्योंकि हमने उसे स्वयं में बन्द कर रखा है। स्वयं की चहारदीवारी से वह मुक्त हो तो वही आनन्द बन जाता है।

*

स्वयं के प्रति जब तक मूर्च्छा है, तब तक जीवन एक स्वप्न है।

*

सत्य के नाम पर शब्दों की पूजा हो रही है। और लोग राह के किनारे लगे मील के पत्थरों (Mile-stones) को ही गन्तव्य समझकर उनके पास निवास कर रहे हैं।

नीति धर्म नहीं है। हां, धर्म जरूर नीति है।

*

आंख में पड़ा छोटा सा तिनका भी बड़े से बड़े पर्वत को ओझल कर लेता है।

*

परमात्मा को जानना है तो परमात्मा के साथ एक हो जाना आवश्यक है।

*

सत्य को पाये बिना साधा गया सत्य-जीवन भी असत्य जीवन ही है।

*

"मैं" जहां है, वहां "वह" नहीं है। "मैं" जहाँ नहीं है, वहीं "वह" है।

*

सत्य की साधना को मैं प्रकाश के संबन्ध में विचार नहीं, वरन् स्वयं के अंधेपन का उपचार कहता हूँ।

*

विचारशून्य चेतना ही समाधि है। समाधि सत्य का द्वार है।

*

स्व-चित्त के प्रति सम्यक् जागरण ही जीवन-विजय का सूत्र है।

*

संसार को नहीं, स्वप्न को छोड़ना ही संन्यास है और जो स्वप्नों को छोड़ने में समर्थ हो जाता है, वह पाता है कि वह तो स्वयं ही सत्य है।

*

हृदय की इच्छाएं कुछ भी पाकर शांत नहीं होती हैं, क्यों ? क्योंकि हृदय तो परमात्मा को पाने के लिये बना है।

*

परमात्मा के अतिरिक्त और कोई संतुष्टि नहीं। उसके सिवाय और कुछ भी मनुष्य के हृदय को भरने में असमर्थ है।

*

जन्म से तो हम अनगढ़े पत्थरों की भांति ही पैदा होते हैं, फिर जो कुरूप या सुन्दर मूर्तियां बनती हैं, उनके स्रष्टा हम ही होते हैं।

*

मनुष्य में आत्म-ध्वंस और आत्म-सृजन दोनों की ही शक्तियां हैं। वह अपना विनाश और विकास दोनों ही कर सकता है।

अविवेक और प्रमाद से जाग कर आँखें खोलो और हिमाच्छादित जीवन शिखरों को देखो जो कि सूर्य के प्रकाश में चमक रहे हैं और तुम्हें अपनी ओर बुला रहे हैं।

*

भय कंपन है, अभय स्थिरता है। भय चंचलता है, अभय समाधि है।

*

प्रेम के चिह्न ही तो प्रभु के द्वार की सीढ़ियाँ हैं।

*

स्वयं से जो दूर ले जावे वही अधर्म है और जो स्वयं में ले आवे उसे ही मैंने धर्म जाना है।

*

किसी ने पूछा : "स्वर्ग और नर्क क्या है?" मैंने कहा : "हम स्वयं।"

*

"मैं" से बड़ा और कोई असत्य नहीं। उसे छोड़ना ही संन्यास है। संसार नहीं, "मैं" छोड़ना है क्योंकि वस्तुतः मैं-भाव ही संसार है।

*

जो मिटने को राजी हो, वह प्रभु को पाने का अधिकारी होता है।

*

स्मरण रहे कि तुम्हारे पास क्या है उससे नहीं वरन् तुम क्या हो, उससे ही तुम्हारी पहचान है।

*

सत्य के सागर को जानना है, तो अपनी बुद्धि के कुओं से बाहर आ जाओ। बुद्धि से सत्य को पाने का कोई उपाय नहीं।

*

जीवन में सबसे गहरा रहस्य-सूत्र क्या है? जब कोई मुझ से यह पूछता है तो मैं कहता हूँ : "जीते जी मर जाना।"

*

शरीर को ही जो स्वयं का होना मान लेता है, मृत्यु उसे ही भयभीत करती है।

*

सत्य की एक बूंद भी असत्य के पूरे सागर से ज्यादा शक्तिशाली होती है।

*

स्वयं पर श्रद्धा ही असहाय मनुष्य का एक मात्र संबल है।

सत्य की एक किरण मात्र को खोज लो। फिर वह किरण ही तुम्हें आमूल बदल देगी।

*

हमारा प्रत्येक भाव, विचार और कर्म हमें निर्मित करता है। उन सब का समग्र जोड़ ही हमारा होना है।

*

जिसे प्रभु को पाना है, उसे प्रतिक्षण उठते-बैठते भी स्मरण रखना चाहिये कि वह जो कर रहा है, वह कहीं प्रभु को पाने के मार्ग में बाधा तो नहीं बन जायेगा।

*

गहरी आकांक्षा स्वयं में परिवर्तन लाती है और स्वयं का निरीक्षण परिवर्तन के लिये गहरी आकांक्षा पैदा करता है।

*

अहंकार एकमात्र जटिलता है। जिन्हें सरल होना है उन्हें इस सत्य को अनुभव करना होगा।

*

सत्य की खोज में स्वयं को बदलना होगा। वह खोज कम आत्म-परिवर्तन ही ज्यादा है।

*

ज्ञाता को ही जो जान लेते हैं, ज्ञान उन्हें ही मिलता है। ज्ञेय के पीछे मत भागो। ज्ञान चाहिये तो ज्ञाता के पीछे चलना आवश्यक है।

*

मनुष्य का मन ही सब कुछ है। यह मन सब कुछ जानना चाहता है। लेकिन ज्ञान केवल उन्हें ही उपलब्ध होता है जो कि इस मन को ही जान लेते हैं।

*

जीवन को जानने और जीने के लिये जागना आवश्यक है। जो जागा नहीं है, वह जीने के भ्रम में ही होता है।

*

जागरण ही जीवन और मूर्च्छा ही मृत्यु है।

*

शब्द सत्य नहीं देते हैं। न दे सकते हैं। सत्य सदा ही अनुभूति है— स्वयं की और स्वयं में और स्वयं के द्वारा।

*

बहुत खोजा पर कहीं "मैं" को पाया ही नहीं। और जो पाया वहां "मैं" बिल्कुल ही नहीं है।

तथाकथित जीवन क्या है? क्या मृत्यु की ही एक धीमी और लम्बी प्रक्रिया नहीं?

*

स्वप्न की खोज करने वाले सत्य से वंचित रह जाते हैं।

*

जो पूरे प्राणों से 'नहीं' (No) कहना नहीं जानता, वह कभी पूरे प्राणों से 'हाँ' (yes) कहने में भी समर्थ नहीं होता है।

*

शास्त्र को छोड़ दो यदि सत्य को पाना है। क्योंकि सत्य उसी रिक्त स्थान में प्रवेश करता है जहाँ कि अभी शास्त्र भरे हुए हैं।

*

प्रभु अपने अमृत द्वार उन्हीं के लिए खोलता है, जो स्वयं के प्रभु होते हैं।

*

अंतस् की स्वतंत्रता को पाये बिना जीवन में कुछ भी सार्थक और कृतार्थता तक नहीं पहुँचाता है।

*

प्रभु को जानना है, तो स्वयं को जीतो। स्वयं से ही जो पराजित है, प्रभु के राज्य की विजय उसके लिये नहीं है।

*

सत्य की साधना सतत है। स्वांस-स्वांस जिसकी साधना बन जाती है वही उसे पाने का अधिकारी होता है।

*

स्मरण रहे कि सत्य के लिये प्रज्वलित प्यास ही पथ है।

*

सत्य को पाने के लिये क्या अपने प्राण दे सकते हो? जो इतना मूल्य चुकाने को राजी होते हैं, सत्य उन्हें निर्मूल्य मिल जाता है।

*

जो जानते हैं वे राह के अवरोधों को सीढ़ियाँ बना लेते हैं और जो नहीं जानते उनके लिये सीढ़ियाँ भी अवरोध बन जाती हैं।

*

आत्मज्ञान एकमात्र ज्ञान है, क्योंकि जो स्वयं को ही नहीं जानते, उनके और सब कुछ जानने का मूल्य ही क्या है!

यदि जीवन को सार्थकता देनी है, और पूर्णता के तट तक अपनी नौका ले जानी है तो और कुछ जानने के पहले स्वयं को जानने में लग जाओ।

*

मनुष्य को स्वयं से ही अतृप्त होना होता है, तभी उसके चरण प्रभु की दिशा में उठते हैं। जो स्वयं से तृप्त हो जाता है, वह नष्ट हो जाता है।

*

मनुष्य प्रभु को पाने का मार्ग है, और जो मंजिल को छोड़ मार्ग से ही संतुष्ट हो जावें, उनके दुर्भाग्य को क्या कहें?

*

अंधकार की चिन्ता छोड़ो और प्रकाश को प्रदीप्त करो। जो अंधकार का ही विचार करते रहते हैं, वे प्रकाश तक कभी नहीं पहुँच पाते हैं।

*

अंधकार से लड़ना अभाव से लड़ना है। वह विक्षिप्तता है। लड़ना है तो प्रकाश पाने के लिये लड़ो।

*

जीवन सत्य, संयम और संगीत से मिलता है। जो किसी भी दिशा में अति करते हैं, वे मार्ग से भटक जाते हैं।

*

शरीर के प्रति राग और विराग का मध्य खोजने और उसमें स्थिर होने से वीतरागता का संयम उपलब्ध होता है।

*

संसार के प्रति आसक्ति और विरक्ति का मध्य खोजने और उसमें स्थिर होने से संन्यास का संयम उपलब्ध होता है।

*

पानी में डूबने से बचना है, तो भंवर में स्वयं को डाल देना। बचाव का और कोई मार्ग नहीं है।

*

अंधकार से भरी रात्रि में प्रकाश की एक किरण का होना भी सौभाग्य है, क्योंकि जो उसका अनुसरण करते हैं वे प्रकाश के स्त्रोत तक पहुँच जाते हैं।

*

प्रार्थना क्या है? प्रेम और समर्पण, और जहाँ प्रेम नहीं है वहां प्रार्थना नहीं है।

चित्त की नित्य सफाई अत्यंत आवश्यक है। उसके स्वच्छ होने पर ही समग्र जीवन की स्वच्छता या अस्वच्छता निर्भर है।

*

'मैं' से बड़ी और कोई भूल नहीं। प्रभु के मार्ग में वही सबसे बड़ी बाधा है।

*

प्रेम के द्वार पर हमारे "मैं" का ही ताला है। जो उसे तोड़ देते हैं, वे पाते हैं कि द्वार तो सदा से ही खुले थे।

*

सत्य और स्वयं में जो सत्य को चुनता है, वह सत्य को भी पा लेता है और स्वयं को भी। और जो स्वयं को चुनता है, वह दोनों को खो देता है।

*

मनुष्य का "मैं" हो जाना ही परमात्मा से उसका पतन है।

*

"मैं" होना नीचे होना है, "न मैं" हो जाना ऊपर उठ जाना है।

*

बीज जब भूमि के भीतर स्वयं को बिलकुल खो देता है, तभी वह अंकुरित होता है और वृक्ष बनता है।

*

आनन्द को पाना है तो जीवन को फूलों की एक माला बनाओ और समस्त अनुभवों को एक लक्ष्य के धागे से अनुस्यूत करो।

*

सत्य की खोज के लिये मुक्त जिज्ञासा पहली सीढ़ी है।

*

आँखें खुली हों तो पूरा जीवन ही विद्यालय है और जिसे सीखने की भूख है, वह प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक घटना से सीख लेता है।

*

जीवन में सजग होकर चलने से प्रत्येक अनुभव प्रज्ञा बन जाता है और जो मूर्छित बने रहते हैं, वे द्वार आये आलोक को भी वापिस लौटा देते हैं।

*

जो जीवन में ऊपर की ओर नहीं उठ रहा है, वह अनजाने और अनचाहे ही पीछे और नीचे गिरता जाता है।

*

वे ही संपदाशाली हैं, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं। इच्छायें दरिद्र बनाती हैं और उनसे घिरा चित्त भिखारी हो जाता है।

समृद्ध तो केवल वे ही हैं, जिनकी कोई मांग शेष नहीं रह जाती है।

*

स्मरण रहे कि मैं मूर्च्छा को ही पाप कहता हूँ। अमूर्च्छित चित्त दशा में पाप वैसे ही असंभव है, जैसे कि जानते और जागते हुए अग्नि में हाथ डालना।

*

प्रमादपूर्ण जीवन और मृत्यु में अंतर ही क्या हो सकता है? जागरण में ही जीवन है।

*

विचार को छोड़ो और निर्विचार हो रहो तो तुम जहां हो, प्रभु का आगमन वहीं हो जाता है।

*

मन्दिर में जाना व्यर्थ है, जो जानते हैं वे स्वयं ही मन्दिर बन जाते हैं।

*

जीवन बहुत तथ्य जानने से नहीं, किन्तु सत्य की एक छोटी सी अनुभूति से ही परिवर्तित हो जाता है।

*

जीवन से अंधकार हटाना व्यर्थ है, क्योंकि अंधकार हटाया ही नहीं जा सकता। जो जानते हैं, वे अंधकार को नहीं हटाते, वरन् प्रकाश को जलाते हैं।

*

प्रभु को पाने की आकांक्षा से भरो, तो पाप अपने से छूट जाते हैं और जो पापों से ही लड़ते रहते हैं, वे उनमें ही और गहरे धँसते जाते हैं।

*

जीवन को विधायक आरोहण दो, निषेधात्मक पलायन नहीं। सफलता का स्वर्ण सूत्र यही है।

*

आंखें सत्य को देखने के लिये हैं। जागो और देखो। जो आंखें होते हुये भी उन्हें बन्द किये हैं, वे स्वयं ही अपना दुर्भाग्य बोते हैं।

*

सत्य को जानो और अनुभव करो तो किसी भी बात का त्याग धीरे-धीरे नहीं करना होता है। सत्य की अनुभूति ही त्याग बन जाती है।

*

जो स्वयं को खोकर सब कुछ भी पा ले, उसने बहुत महंगा सौदा किया है। वह हीरे देकर कंकड़ बीन लाया है।

जीवन तो वही है, पर दृष्टि भिन्न होने से सब कुछ बदल जाता है। दृष्टि भिन्न होने से फूल काँटे हो जाते हैं और काँटे फूल बन जाते हैं।

*

आनंद तो हर जगह है, पर उसे अनुभव कर सकें ऐसा हृदय सबके पास नहीं है।

*

शांति का प्रारंभ वहां से है जहां कि महत्त्वाकांक्षा का अंत होता है।

*

काश ! हम शांत हो सकें और भीतर गूँजते शब्दों और ध्वनियों को शून्य कर सकें तो जीवन में जो सर्वाधिक आधारभूत है, उसके दर्शन हो सकते हैं।

*

सत्य के दर्शन के लिये शांति के चक्षु चाहिए। उन चक्षुओं को पाये बिना जो सत्य को खोजता है, वह व्यर्थ ही खोजता है।

*

सत्य तो सदा निकट है, लेकिन अपनी अशांति के कारण हम सदा उसके निकट नहीं होते हैं।

*

स्मरण रखना कि जो कुछ भी बाहर से मिलता है, वह छीन भी लिया जायेगा।

*

प्रभु को पाना है तो मरना सीखो। क्या देखते नहीं कि बीज जब मरता है तो वृक्ष बन जाता है।

*

जीवन में ही मरना सीख लेने से बड़ी और कोई कला नहीं है। उस कला को ही मैं योग कहता हूँ।

*

मृण्मय घरों को ही बनाने में जीवन को व्यय मत करो। उस चिन्मय घर का भी स्मरण करो जिसे कि पीछे छोड़ आये हो और जहाँ कि आगे भी जाना है।

*

प्रभु के अतिरिक्त जिनकी कोई चाह नहीं है, असंभव है कि वे उसे न पा लें।

*

बहुत संपत्तियाँ खोजी, किन्तु अंत में उन्हें विपत्ति पाया। फिर स्वयं में सम्पत्ति के लिये खोज की। जो पाया वही परमात्मा था। तब जाना कि परमात्मा को खो देना ही विपत्ति और उसे पा लेना ही संपत्ति है।

*

जिनके पास सब कुछ है उन्हें दरिद्र देखा और ऐसे संपत्तिशाली भी देखे, जिनके पास कुछ भी नहीं है।

जिन्हें सब पाना है; उन्हें सब छोड़ देना होगा। जो सब छोड़ने का साहस करते हैं, वे स्वयं प्रभु को पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

*

मृत्यु से भयभीत केवल वे ही होते हैं जो कि जीवन को नहीं जानते।

*

अंतःकरण जब अक्षुब्ध होता है और दृष्टि सम्यक् तब जिस भाव का उदय होता है, वही भाव परमसत्ता में प्रवेश का द्वार है।

*

मैंने सबसे बड़ी संपत्ति "समभाव" को जाना है।

*

वासनाओं के पीछे दौड़ने वाले नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे। वह मार्ग आत्म-विनाश का है।

*

वासना दुष्पूर है। उसका कितना ही अनुगमन करें, वह उतनी ही दुष्पूर बनी रहती है। उससे मुक्ति तो तब होती है, जब कोई पीछे देखता है और स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है।

*

सहनशीलता जिसमें नहीं है, वह शीघ्र टूट जाता है। और जिसने सहनशीलता के कवच को ओढ़ लिया है, जीवन में प्रतिक्षण पड़ती चोटें उसे और भी मजबूत कर जाती हैं।

*

धर्म एक है। सत्य एक है। और जो उसे खंडों में देखते हों, वे जानें कि जरूर उनकी आँखें ही खंडित हैं।

*

संयम क्या है? अस्पर्श-भाव संयम है। तटस्थ साक्षी-भाव संयम है। संसार में होना और साथ ही नहीं होना संयम है।

*

प्रभु को देखने का कोई और मार्ग मैं नहीं जानता हूँ। एक ही मार्ग है और वह है सब ओर पवित्रता का अनुभव होना।

*

जगत् में आँखें खुली हों तो ज्ञान मिलता है और ज्ञान आये तो वैराग्य आता है।

*

इच्छायें दरिद्र बनाती हैं। उनसे ही याचना और दासता पैदा होती है।

दुःख क्या है ? कुछ पाने की और कुछ होने की आकांक्षा ही दुःख है।

*

जो जीवन में कुछ भी नहीं कर पाते, वे अक्सर आलोचक बन जाते हैं। जीवन पथ पर चलने में जो असमर्थ हैं, राह के किनारे खड़े हो दूसरों पर पत्थर ही फेंकने लगते हैं।

*

प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं, वह सिर्फ मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है।

*

अहंकार अप्रेम है और जो जितना अहंकार को छोड़ देता है, वह उतना ही प्रेम से भर जाता है।

*

अहंकार जब पूर्ण रूप से शून्य होता है, तो प्रेम पूर्ण हो जाता है। ऐसा प्रेम ही परत्मामा के द्वार की सीढ़ी है।

*

सुख और दुःख को जो समभाव से समझ ले तो समझना कि उसने स्वयं को जान लिया।

*

"मैं" को भूल जाना और "मैं" से ऊपर उठ जाना सबसे बड़ी कला है।

*

सदा स्वयं के भीतर गहरे से गहरे होने का प्रयास करते रहो। भीतर इतनी गहराई हो कि कोई तुम्हारी थाह न ले सके। अथाह जिसकी गहराई है, अगोचर उसकी ऊँचाई हो जाती है।

*

सेवा की नहीं जाती, वह तो प्रेम से सहज ही निकलती है। और प्रेम ? प्रेम आनन्द का स्फुरण है। अंतस् में जो आनंद है, आचरण में वही प्रेम बन जाता है।

*

हजार मील चलने का विचार करने से एक कदम चलना भी ज्यादा मूल्यवान है, क्योंकि वह कहीं पहुँचाता है।

*

प्रेम अभय है। अप्रेम भय है। जिसे भय से ऊपर उठना हो उसे समस्त के प्रति प्रेम से भर जाना होगा।

जीवन के तथाकथित सुखों की क्षणभंगुरता को देखो। उसका दर्शन ही उनसे मुक्ति बन जाता है।

*

जीवन का स्वाद बहुत कुछ हमारे उसे देखने के ढंग पर निर्भर करता है। कोई चाहे तो दो अंधकार पूर्ण रातों के बीच एक छोटे से दिन को देख सकता है और चाहे तो दो प्रकाशोज्वल दिनों के बीच एक छोटी सी रात्रि को।

*

जिस आदर्श में व्यवहार का प्रयत्न न हो, वह फिजूल है और जो व्यवहार आदर्श प्रेरित न हो वह भयंकर है।

*

व्यक्तित्व के साथ स्वरूप को एक जानना जब तक है तब तक मृत्यु है। व्यक्तित्व से गहरे उतरें, स्वरूप पर पहुँचें और अमृत उपलब्ध हो जाता है।

*

मृत्यु न तो शत्रु है, न मित्र है। मृत्यु है ही नहीं। न उससे भय करना है, न उससे अभय होना है, केवल उसे जानना है। उसका अज्ञान भय है, उसका ज्ञान अभय है।

*

धर्म का भय से कोई संबंध नहीं है। धर्म तो अभय से उत्पन्न होता है।

*

प्रेम का भय से पैदा होना असंभावना है।

*

वह धार्मिकता और नैतिकता जो भय पर आधारित होती है, सत्य नहीं, मिथ्या है। वह आरोपण है, आत्मशक्ति का आरोहण नहीं।

*

धर्म और प्रेम के फूल अभय की भूमि में ही लगते हैं। और भय में जो लगा लिये जाते हैं, वे फूल नहीं कागज के धोखे हैं।

*

ईश्वरानुभूति अभय में ही उपलब्ध होती है। या कि ठीक हो यदि कहें कि अभय चेतना ही ईश्वरानुभूति है।

*

स्वप्नों में मृत्यु है। सत्य में जीवन है।

*

जीवन के अनंत, असीम प्रवाह पर 'मैं' की गांठ ही बंधन है।

"मैं" व्यक्ति को सत्ता से तोड़ देता है।

*

सत्य कैसा है यह निर्णय नहीं करना होता है, वरन् अपने को खोलते ही वह जैसा है उसका दर्शन हो जाता है।

*

सत्य का निर्णय नहीं, दर्शन करना होता है।

*

कोई क्रिया "मैं" के रहस्य को नहीं खोलेगी, क्योंकि क्रिया मात्र बाहर ले जाती है।

*

सत्य क्रम से नहीं, विस्फोट से उपलब्ध होता है।

*

विचारों से अज्ञान मिटता नहीं, केवल छिप जाता है।

*

अज्ञान के बोध का तीव्र संताप ही क्रांति का विन्दु है।

*

सत्य को पाने को और कुछ नहीं, केवल स्वप्न ही छोड़ने पड़ते हैं।

*

जो देखता है, उसे देखो। यही समस्त योग है।

*

जो "देखता है" उसे देखो और शून्य में उतरना हो जाता है।

*

बुद्धि चुप हो तो अनुभूति बोलती है। विचार मौन हों तो विवेक जागृत होता है।

*

चित्त जिस क्षण खोज की व्यर्थता को जानकर चुप और स्थिर रह जाता है, उसी क्षण अनंत के द्वार खुल जाते हैं।

*

दिशा शून्य चेतना प्रभु में विराजमान हो जाती है।

*

ज्ञान की प्यास का अंत केवल प्रभु में ही है।

पूर्ण मौन ही एकमात्र प्रार्थना है। प्रार्थना कुछ करना नहीं है, वरन् जब चित्त कुछ भी नहीं कर रहा तब वह प्रार्थना में है।

*

प्रार्थना क्रिया नहीं, अवस्था है।

*

जो मिटने को राजी है, वह पूर्ण हो जाता है। जो मरने को राजी है, वह जीवन को पा लेता है।

*

सब खोज छोड़ो और चुप हो जाओ।

*

दुःख-विस्मरण का उपाय जैसे स्व-विस्मरण है, वैसे ही दुख विनाश का उपाय स्व-स्मरण है।

*

धर्म वह है जो स्व को परिपूर्ण जाग्रत करता है।

*

स्व-स्मृति पथ है। स्व-विस्मृति विपथ है। स्व-स्मृति से ही अहं विसर्जित होता है।

*

जिसे प्रभु को पाना है, उसे प्रतिक्षण उठते-उठते भी स्मरण रखना चाहिये कि वह जो कर रहा है, वह कहीं प्रभु को पाने के मार्ग में बाधा तो नहीं बन जायेगा?

*

जीवन का पथ अंधकारपूर्ण है, लेकिन स्मरण रहे कि इस अंधकार में दूसरों का प्रकाश काम में नहीं आ सकता। प्रकाश अपना ही हो तो ही साथी है। जो दूसरों के प्रकाश पर विश्वास कर लेते हैं, वे धोखे में पड़ जाते हैं।

*

अग्नि जिसे जला दे और मृत्यु जिसे मिटा दे, वह जीवन नहीं है।

*

प्रेम जिस हृदय में नहीं है, वही दरिद्र है; वही दीन है; वही अशक्त है। प्रेम शक्ति है, सम्पदा है। प्रेम प्रभुता है।

*

जीवन का तनाव और द्वन्द्व "मैं" और "न मैं" के विरोध से पैदा होता है। यही मूल चिन्ता और दुःख है।

"मैं" शून्य हो तो पूर्ण हो जाता है या कि "मैं" पूर्ण हो तो शून्य हो जाता है।

*

कल्पना जहाँ शून्य होती है, ध्यान वहीं प्रारंभ होता है। और कल्पना में नहीं कल्पनाशून्य ध्यान में जो जाना जाता है वही सत्य है।

*

सत्य की आकांक्षा है तो स्वयं को छोड़ दो। "मैं" से बड़ा और कोई असत्य नहीं। उसे छोड़ना ही संन्यास है।

*